प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान : पारस्परिक सम्बन्ध

श्री चाँदमल कर्णावट, उदयपुर

भूतकालीन भूलों की शुद्धि का सरल उपाय प्रतिक्रमण है और भविष्यकालीन पापों से बचाने वाला प्रत्याख्यान है। प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान दोनों एक-दूसरे की अपेक्षा रखने से पूरक हैं। लेखक ने विभिन्न बिन्दुओं में प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान के पारस्परिक संबंध को सुस्पष्ट किया है। प्रत्याख्यान की प्रेरणा से सम्पूरित यह लेख पाठकों के जीवन में चेतना लाने वाला है।

-सम्पादक

प्रतिक्रमण जैन धर्म का एक प्रमुख अनुष्ठान है। प्रत्याख्यान भी प्रतिक्रमण (आवश्यक) में किये जाने वाला एक महत्त्वपूर्ण आवश्यक है, जिसे धारण कर भविष्य काल के पापों से साधक बचता है। पहले इन दोनों के विषय में संक्षेप में समझ लेना आवश्यक होगा, जिससे इनका पारस्परिक सम्बन्ध समझा जा सके।

प्रतिक्रमण क्या है?

प्रतिक्रमण दैनन्दिन होने वाली भूलों/पापों/दोषों से शुद्ध होने की क्रिया है। दिनभर में होने वाली भूलों का चिंतन कर दूसरे दिन इनके न दुहराने का संकल्प प्रतिक्रमण है। प्रतिक्रमण का शब्दार्थ है प्रतिक्रमण अर्थात् पापों से पीछे हटना और अपने शुद्ध स्वरूप में आना। आवश्यक चूर्णि में कहा गया है- "पडिक्कमणं पुनरावृत्तिः" अर्थात् जिन प्रवृत्तियों से साधक सम्यक् ज्ञान, दर्शन एवं चारित्र रूप स्वस्थान से (आत्मस्वभाव से) हटकर मिथ्यात्व, अज्ञान एवं असंयममय स्थान में जाने के पश्चात् पुनः उसका अपने आपमें (आत्मस्वभाव में) लौट आना प्रतिक्रमण या पुनरावृत्ति है। आचार्य हेमचन्द्र ने योगशास्त्र में और आचार्य हरिभद्र ने आवश्यकवृत्ति में शुभयोगों से अशुभयोगों में जाने पर पुनः शुभ योगों में लौटने को प्रतिक्रमण माना है। प्रतिक्रमण आलोचनापूर्वक 'मिच्छामि दुक्कडं' रूप पश्चात्ताप या प्रायश्चित्त है। यह एक तप है और शुद्धि का कारण है। साध्वी मृगावती ने इसी पश्चात्ताप अथवा प्रायश्चित्त से समस्त कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था।

प्रतिक्रमण आत्मा का स्नान है, जो अनेक जन्मों के कर्ममल को धोकर आत्मा को शुद्ध बनाता है। हमें उपयोगपूर्वक पापों की आलोचना या पश्चात्ताप स्वरूप भाव-प्रतिक्रमण करने का प्रयास करना चाहिए।

आवश्यक निर्युक्ति (१२३३) में आचार्य भद्रबाहु ने प्रतिक्रमण के ८ पर्यायवाची शब्दों में निन्दा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गर्हा, शुद्धि आदि को भी प्रतिक्रमण का पर्याय बताया है।

प्रत्याख्यान क्या है?

सामायिकादि छः आवश्यकों में प्रत्याख्यान छठा और अंतिम आवश्यक है। इसका अर्थ है- असीम इच्छाओं पर नियंत्रण करने हेतु द्रव्य,क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादापूर्वक कुछ व्रत, नियम या प्रतिज्ञा ग्रहण करना, प्रवचनसारोद्धारवृत्ति में कहा गया- ''अविरति और असंयम के प्रतिकूल रूप में मर्यादा के साथ प्रतिज्ञा ग्रहण करना। मर्यादा के साथ अशुभ योग से निवृत्ति और शुभयोग में प्रवृत्ति का आख्यान करना प्रत्याख्यान है। अनुयोगद्वारसूत्र में प्रत्याख्यान का नाम गुणधारण प्रयुक्त हुआ है। गुण मुख्यतः मूलगुण और उत्तरगुण दो हैं। मूलगुणों में साधु-साध्वी के ५ महाव्रत और श्रावक-श्राविका के अहिंसादि ५ अणुव्रत हैं और उत्तर गुणों में साधु-साध्वी के नवकारसी आदि १० पच्चक्खाण और श्रावक-श्राविका के लिए ३ गुणव्रत, ४ शिक्षाव्रत तथा १० प्रत्याख्यान हैं। उत्तराध्ययन २९/३७ में ९ प्रकार के प्रत्याख्यानों में कषाय का प्रत्याख्यान भी बताया है।

प्रत्याख्यान पापों से सुरक्षा का एक कवच है। यह साधक को भविष्य कालीन पापों से बचाता है।

'आवश्यक निर्युक्ति' में आचार्य भद्रबाहु ने प्रत्याख्यान के लाभों की एक शृंखला दी है। प्रत्याख्यान से संयम, सयंम से आस्रव-निरोध, आस्रव-निरोध से तृष्णा का अन्त, उससे उपशमभाव व उपशम भाव से चारित्रधर्म, उससे कर्म-निर्जरा, कर्म-निजर्रा से केवल ज्ञान-दर्शन और उससे साधक अंत में मुक्ति प्राप्त करता है।

साधक को सुप्रत्याख्यान और दुष्प्रत्याख्यान का स्वरूप समझकर इनका शुद्धिपूर्वक पूर्ण पालन करना चाहिए।

प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान द्वारा पापों से निवृत्ति

प्रतिक्रमण भूतकाल का एवं प्रत्याख्यान भविष्य काल का होता है। प्रतिक्रमण भूतकाल की भूलों और दोषों की शुद्धि के लिए किया जाता है, जबकि प्रत्याख्यान भविष्यकाल में दोष न करने हेतु किया जाता है। आचार्य भद्रबाहु के अनुसार भविष्यकाल के प्रति आ-मर्यादा के साथ अशुभ योगों से निवृत्ति और शुभ योगों में प्रवृत्ति का आख्यान होने से प्रत्याख्यान भविष्यकाल का प्रतिक्रमण है। प्रत्याख्यान ग्रहण करने से भविष्य काल में होने वाले पापों पर रोक लग जाती है, साधक अशुभयोगों से निवृत्त होकर शुभ में स्थित होता है, यही प्रतिक्रमण है जो भविष्यकाल की दृष्टि से होता है। वर्तमान में तो साधक सामायिक संवर में होता ही है, वह वर्तमान काल का प्रतिक्रमण है। इस प्रकार प्रत्याख्यान और प्रतिक्रमण दोनों मिलकर पापों से लौटने की क्रिया को सम्पन्न करते हैं।

प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान से परिपुष्ट

मूलगुणों एवं उत्तरगुणों के प्रत्याख्यान से प्रतिक्रमण का अनुष्ठान अधिक पुष्ट बनता है। मूलगुण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसादि तथा उत्तरगुण छठे से १२वें व्रत तक के प्रत्याख्यान- इन दोनों से दोषों का निरोध होकर जीवन शुद्धि की ओर अग्रसर होता है। उपर्युक्त प्रत्याख्यानों से साधक के जीवन में अतिचारों/आस्रवों में कमी होकर शुभयोगों एवं आत्मस्वभाव या आत्मगुणों में उनके कदम आगे बढते हैं। आत्मशुद्धि के उपक्रम में पुष्टि और तीव्रता आती है। मोक्षमार्ग अधिक प्रशस्त बनता है। इस प्रकार प्रत्याख्यान भविष्यकालीन पापों से हमें बचाता, अतिचारों को कम करता और शुभयोगों में स्थित रहने में पुष्टता प्रदान करता है।

मोक्ष-प्राप्ति में दोनों का सहसम्बन्ध

प्रतिक्रमण आस्रवद्वारों का निरोध करने के कारण संवररूप माना गया है। प्रतिक्रमण इस प्रकार नवीन कर्मों के बंध से आत्मा को बचाता है। इसके साथ प्रत्याख्यान भी आस्रवों को रोकता है। उत्तराध्ययन सूत्र (२९/१२-१३) में कहा गया है -

१. पडिक्कमणेणं वयछिद्दाइं पिहेइ, पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे।

२. पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुम्भइ। अर्थात् प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान दोनों आस्रवद्वार के पाप मार्गों को रोककर आत्मा को संवरमय बनाते हैं। संवर निर्जरा का हेतु भी है, क्योंकि मन, वचन, काया, पाँच इन्द्रियों आदि पर नियंत्रण निर्जरा का कारण भी है। इस प्रकार संवर-निर्जरा दोनों की सम्पन्नता से आत्मा मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर होती है।

मोक्षसिद्धि में दोनों का योग

प्रतिक्रमण संवररूप है और प्रत्याख्यान तप निर्जरा रूप। दशवैकालिक वृत्ति में आचार्य जिनदास ने बताया- 'इच्छानिरोधस्तपः'। प्रत्याख्यान में साधक इच्छाओं का निरोध करता है, जिससे तप की साधना करता है। इस प्रकार प्रतिक्रमण से संवर (नवीन कार्यों पर रोक) और प्रत्याख्यान रूप तप से पूर्वकृत कर्मों की निर्जरा करते हुए साधक मोक्ष सिद्धि करता है। इस तरह प्रतिक्रमण एवं प्रत्याख्यान दोनों का मोक्षसिद्धि में योग है।

उत्तराध्ययन (३०/५-६) में तालाब का उदाहरण देकर बताया गया है कि जैसे तालाब को खाली करने के लिए पानी आने का मार्ग बन्द करना तथा बाद में एकत्रित पानी को निकालना आवश्यक है इसी प्रकार कर्मरूप एकत्र जल के लिए भी संवर और निर्जरा द्वारा क्रमशः पापकर्मों को रोकना और पूर्व कर्मों को क्षय करना आवश्यक है।

प्रत्याख्यान की प्रतिक्रमण से सार्थकता-

प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण करने से ही सार्थक बनते हैं। प्रतिक्रमण करते हुए साधक यह चिंतन करता है कि उसके प्रत्याख्यानों में कहीं दोष तो नहीं लगा। अतिक्रमण या ग्रहीत मर्यादा का उल्लंघन तो नहीं हुआ। इस प्रकार चिन्तन करने से प्रत्याख्यान का सम्यक् परिपालन संभव है, अन्यथा नहीं। कह सकते हैं कि प्रतिक्रमण की क्रिया प्रत्याख्यानों की समीक्षा है। अतिक्रमण यदि हुआ तो उससे पुनः व्रत में स्थित होने की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह महत्त्वपूर्ण क्रिया है। अतः प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान का रक्षक है। इससे दोष उत्पन्न ही नहीं हो सकते। यह साधक को जागरूक बनाता है और साधक प्रत्याख्यानों का निरतिचार पालन करते हुए अपने लक्ष्य/गंतव्य तक पहुँच जाता है।

प्रतिक्रमण से प्रत्याख्यान पालन में शुद्धि एवं जागरूकता

प्रतिक्रमण भूलशुद्धि की प्रभावी प्रक्रिया है। यदि दोषों की शुद्धि नहीं की गई, उन्हें अन्दर ही दबाकर रखा गया तो अन्दर ही अन्दर विष बढता चला जायेगा और साधक के जीवन को बर्बाद कर देगा, इसलिए दोषों की गर्हा निन्दा करनी चाहिए। यही प्रतिक्रमण है। इससे अर्थात् प्रतिक्रमण से भूलों की दूरी बढ़ेगी और एक दिन साधक उनसे मुक्त हो सकता है अन्यथा विषाक्त स्थिति असाध्य रोग को जन्म दे सकती है। (द्रष्टव्य, आवश्यक सूत्र, प्रस्तावना, श्री देवेन्द्रमुनि शास्त्री)

प्रत्याख्यान और प्रतिक्रमण की पारस्परिक पूरकता

प्रत्याख्यान न हो तो प्रतिक्रमण किसका किया जाय और प्रतिक्रमण मर्यादा के अतिक्रमण का न किया जाय तो कैसा प्रत्याख्यान- इस प्रकार दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। प्रत्याख्यानों से प्रतिक्रमण की सार्थकता है और प्रतिक्रमण से प्रत्याख्यानों की सार्थकता है। जीवन में दोनों आवश्यक हैं। जब तक जीवन में दोष लगने संभव हैं तब तक प्रतिक्रमण एवं प्रत्याख्यान आवश्यक हैं। संसारी रागद्वेषग्रस्त आत्मा के लिए ये दोनों आवश्यक हैं। लक्ष्य फिर भी वीतरागता का ही होना चाहिए। वीतरागता के राजमार्ग पर आगे बढने के क्रम में प्रतिक्रमण एवं प्रत्याख्यान दोनों का मिलाजुला योगदान है।

प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण पुनः पुनः मलिनता से बचाव हेतु-

प्रतिक्रमण का लक्ष्य है कि पुनः पुनः अतिचार या दोषों का सेवन न हो। प्रत्याख्यान भी इसी लक्ष्य से किए जाते हैं। सामायिकादि से आत्मशुद्धि की जाती है, किन्तु पुनः आसक्तिरूपी तस्कारराज अन्तर्मानस में प्रविष्ट न हो, इसके लिए प्रत्याख्यान अत्यन्त आवश्यक है। जैसे एक बार वस्त्र को स्वच्छ बना दिया गया, वह पुनः मलिन न हो इसके लिए वस्त्र को कपाट में रखा जाता है, इसी प्रकार मन में मलिनता न आए इसके लिए भी प्रत्याख्यान किया जाता है। (देवेन्द्रमुनि शास्त्री, आवश्यक सूत्र की प्रस्तावना पृ.५०) इस प्रकार प्रत्याख्यान प्रतिक्रमण की लक्ष्य प्राप्ति में और प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान की सिद्धि में सहायक है।

सम्बन्धों में शाश्वतता/चक्रवत् आवर्तनवत् -

जब तक जीवन में प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान की आवश्यकता है तब तक ये दोनों चक्रवत् क्रमशः प्रयुक्त होते रहेंगे। प्रतिक्रमण किया जायेगा तो समाप्ति में छठे आवश्यक/अंतिम आवश्यक में प्रत्याख्यान भी किए जायेंगे और प्रत्याख्यान के उपरान्त पुनः प्रतिक्रमण भी दूसरे दिन किया जायेगा। स्पष्ट करें तो कहना होगा कि जब-जब प्रत्याख्यान किये जायेंगे तब तब उनमें लगे दोषों या मर्यादा के अतिक्रमण का प्रतिक्रमण भी किया ही जायेगा। जब-जब प्रतिक्रमण किया जाएगा तो अंतिम आवश्यक में प्रत्याख्यान भी ग्रहण किए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ही जायेंगे।

विशेष कथनीय -

प्रतिक्रमण जीवन में आगे बढने एवं आत्म-कल्याण हेतु आवश्यक है। इसके लिए आवश्यक है कि हमारा प्रतिक्रमण द्रव्य प्रतिक्रमण न होकर भाव प्रतिक्रमण हो। अनुयोगद्वार सूत्र में प्रतिक्रमण के इन दोनों भेदों पर प्रकाश डाला गया है। प्रतिक्रमण करते हुए व्रतों में लगे अतिचारों का चिंतन करें उनके प्रति पश्चात्ताप करें और भविष्य में उन्हें न दुहराने का संकल्प करें तथा "तच्चित्ते तम्मणे तल्लेस्से" आदि के अनुसार एकाग्रचित्त होकर इसे संपन्न करें।

इसी प्रकार प्रत्याख्यान के विषय में 'आवश्यक दिग्दर्शन' में उपाध्यायश्री अमरमुनिजी ने प्रत्याख्यान या त्याग के द्रव्य और भाव दो भेद किए। अगर भावपूर्वक त्याग नहीं हुआ और द्रव्य का ही त्याग रहा तो वह विशेष फलदायक कैसे हो सकता है? इन्द्रिय विषयों पर एवं कषायादि पर विजय तथा कर्मनिर्जरा के लिए ही प्रत्याख्यान काल उचित होगा। कोई भी प्रत्याख्यान भली-भाँति उसका स्वरूप समझकर किया जाय तभी वह सुप्रत्याख्यान हो सकेगा।

प्रत्याख्यान और प्रतिक्रमण दोनों केवल आध्यात्मिक लाभ के ही कारण नहीं, वे इस लोक में भी समता, नम्रता, क्षमाभाव आदि सद्गुणों की वृद्धि होने से शान्ति और सुख प्रदायक बनते हैं। (आवश्यक सूत्र, प्रस्तावना- देवेन्द्रमुनि शास्त्री)

मूलगुणों की सुरक्षार्थ उत्तर गुण हैं। उत्तरगुण न भी हों और मूलगुण हों तो धर्म, गुरु की शोभा होगी। व्यवहार में हिंसादि का त्याग होगा। इस प्रकार मूलगुणों के साथ उत्तरगुणों की शोभा हेतु प्रत्याख्यान में मूलगुणों और उत्तरगुणों को धारण किया जा सकता है। (सम्यक्त्व पराक्रम, जवाहराचार्य, पृ. १६९-१७०)

-३५, अहिंसापुरी, फतहपुरा, उदयपुर (राज.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org